बुन्सन बर्नर के बीच की छह इंच जगह

● मिलिन्द वाटवे

सालों-साल पहले, जैसा अपने शिक्षक से समझते आए थे, वैसा ही छात्रों को पढ़ाया कि छह इंच की दूरी पर रखे हुए दो जलते हुए बुन्सन बर्नर के बीच या तो जीवाणु होंगे ही नहीं या फिर बहुत ही कम होंगे। लेकिन उस दिन एक छात्र ने मानने से इंकार कर दिया। उसके बाद हमने सोचा कि क्यों न प्रयोग करके देखें। जब प्रयोग किया तो.....।

माइक्रो-बायोलॉजी और बायो-टेक्नॉलॉजी इन दोनों विषयों में एक प्रमुख अवधारणा यह है कि जीवाणु-रहित माहौल में प्रयोग करने चाहिए। चाहे आप पेड़-पौधों या प्राणियों के ऊतकों को बढ़ाने में लगे हों, जीवाणु की कल्चर तैयार कर रहे हों, इंजेक्शन द्वारा शरीर में पहुंचाई जाने वाली दवाईयों पर काम कर रहे हों या कुछ ऐसा ही और – यह लाज़िमी हो जाता है कि इन सबको जीवाणुओं द्वारा दूषित होने से बचाया जाए।

जीवाणु हवा में, किसी भी पदार्थ की सतह पर और शोधकर्ता की त्वचा पर, हर जगह मौजूद होते हैं; और उसके खांसने, छींकने व यहां तक की सांस लेने पर भी वातावरण में निरंतर फैलते रहते हैं। इस वजह से स्थिति पेचीदा बन जाती है। बोतलों, परखनलियों और जिस माध्यम में काम हो रहा है, उन सबको तो जीवाणुहीन बनाया जा सकता है लेकिन कमरे के सम्पूर्ण वातावरण और खुद अपने आप को जीवीणुहीन कैसे बनाएं, शोधकर्ता के लिए एक खासी चुनौती रहती है? फिर भी ऐसे कई तरीके हैं जिन्हें अपनाकर दूषण की संभावना को इस प्रकार के प्रयोगों के लिए स्वीकार्य निम्न स्तर पर बनाए रख सकते हैं।

औद्योगिक एवं शोध इकाइयों में आमतौर पर 'लेमिनर फ्लो' नामक

उपकरण का इस्तेमाल करके, जीवाणुहीन हवा की पर्तों को प्रयोग.करने के इलाके पर से लगातार बहाया जाता है। परन्तु लेमिनर फ्लो उपकरण काफी महंगे होते हैं और ज़्यादातर महाविद्यालयीन प्रयोग शालाएं इसे जुटा पाने में असमर्थ होती हैं।

तो फिर महाविद्यालयीन प्रयोग शालाएं क्या करती हैं? वहां छात्रों से कहा जाता है कि वे दो बुन्सन बर्नर लें और उन्हें लगभग 6 इंच की दूरी पर जलाकर रखें। फिर छात्रों से अपेक्षा की जाती है कि वे इस 6 इंच के क्षेत्र में ही पूरा प्रयोग करें। वैसे यह छोटी-सी जगह थोड़े अभ्यास के बाद काम करने के लिए पर्याप्त रहती है।

तीन साल पहले बी. एस सी. प्रथम वर्ष के छात्रों को मैं यह सब ठीक उसी तरह समझा रहा था, जैसे मैंने पन्द्रह साल पहले अपने शिक्षक से सुना था, "देखो, जब तुम ये बर्नर जलाओगे तो हवा फैलती है और वहां से हटती चली जाती है। अगर तुम परखनली का मुंह इस क्षेत्र में खोलते हो तो बाहरी हवा में स्थित दूषित तत्व परखनली में घुस पाएं इसकी संभावना काफी कम होती है। इस प्रकार तुम अपना काम जीवाणुहीन वातावरण में कर सकते हो।"

लेकिन वो नहीं माना

साल-दर-साल छात्र इस बात को बिना वाद-विवाद के स्वीकार करते रहे थे। लेकिन उस दिन एक लड़का इस बात को मानने के लिए कतई तैयार नहीं हुआ। हमने हवा के प्रवाहों पर बहस की, लेकिन उस पर भी एकमत नहीं हो पाए। इसलिए

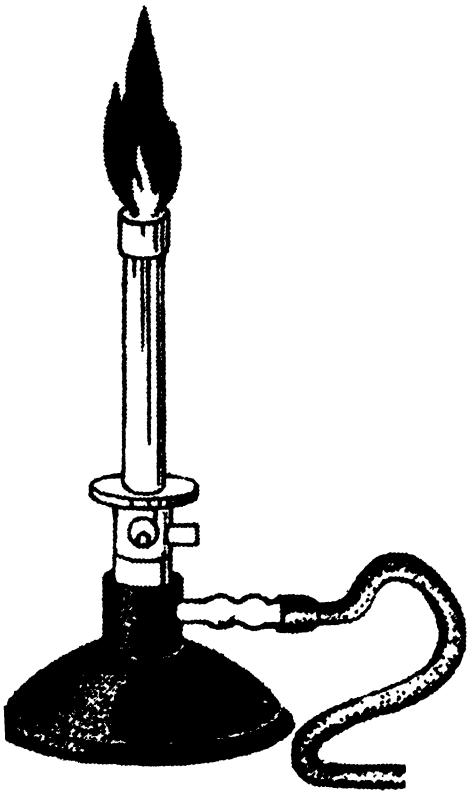

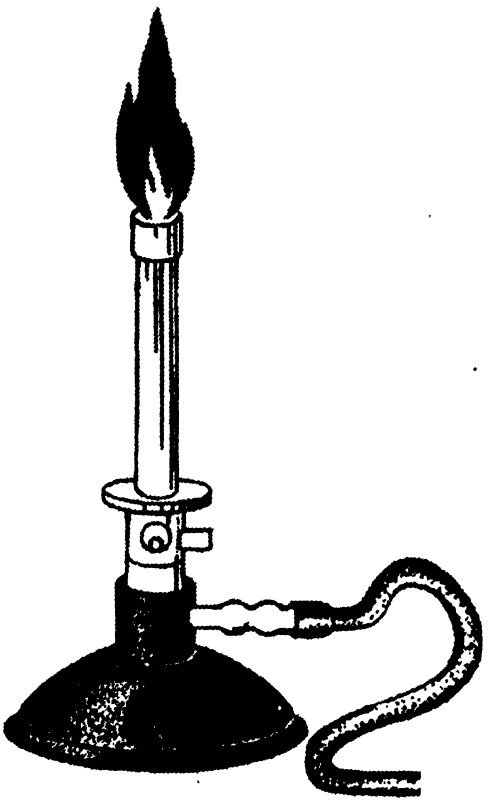

हमने प्रयोग करने जांचना तय किया। मैंने सोचा कि एक सरल तरीका होगा कि हवा में उड़ सकने वाले दृश्य कण उत्पन्न किए जाएं ताकि उमसे हवा के प्रवाहों के बारे में अंदाज़ा लगा सकें। हमने थोड़ा-सा कागज़ जलाया और जले हुए उस बारीक चूरे का उपयोग किया जिस पर कि हवा के हलके-से-हलके बहाव का भी असर पड़ता है। यह प्रयोग कुछ हद तक सफल रहा लेकिन कोई स्पष्ट तस्वीर उभरकर सामने न आई। फिर हमने यह तय किया कि दोनों बर्नर के आसपास के जीवाणुओं के वितरण को जांचेंगे। यह जांचने के लिए सरल तकनीक है कि पोषक माध्यम से बनी 'जेल' (gel) को निश्चित अवधि के लिए विशेष स्थानों पर खुला छोड़ दिया जाए। हवा में तैरते हुए जीवाणु अगर इस जेल के सम्पर्क में आते हैं तो वे इससे चिपक जाते हैं और पोषण प्राप्त होने पर बढ़ने लगते हैं। रात भर में प्रत्येक जीवाणु अपनी कॉलोनी बना लेता है, जिसे देखा और गिना जा सकता है। हालांकि इससे हवा के एक इकाई आयतन में कुल जीवाणुओं की संख्या का पता नहीं चल सकता, लेकिन हवा में अलग-अलग जगह पर जीवाणुओं की संख्या के बीच एक तुलनात्मक अनुपात का अंदाज़ा ज़रूर मिल जाता है।

इस प्रयोग में हमने जीवाणुओं का अनुपात जानने के लिए तश्तरियों को बुन्सन बर्नर की लौ से भिन्न-भिन्न दूरियों और ऊंचाइयों पर समान समय के लिए खुला रखा। अगले दिन मैं यह प्रमाणित करने वाला था कि जो तश्तरियां दोनों बर्नरों के बीच के 6 इंच वाले क्षेत्र में रखी गई थीं उन पर या तो जीवाणु होंगे ही नहीं या थोड़ी संख्या में ही पाए जाएंगे और जैसे-जैसे तश्तरियों की दूरी बर्नर से बढ़ती जाएगी वैसे-वैसे इन पर जीवाणुओं की संख्या भी बढ़ती जाएगी। लेकिन ऐसा बिल्कुल भी नहीं हुआ। यह देखकर मैं अचंभित रह गया। इस 6 इंच वाले क्षेत्र में रखी गई तश्तरियों पर जीवाणुओं की संख्या उतनी ही थी जितनी कि बर्नर से दो फुट दूर रखी गई तश्तरियों पर। ऐसा क्यों हुआ?

ज़रूर ही कोई गंभीर भूल हो गई होगी। मैंने उन सब कारणों के बारे में गहराई से सोचा जिनकी वजह से प्रयोग विफल हुआ होगा। मैंने प्रयोग करने के लिए दुबारा ध्यानपूर्वक योजना बनाई। तश्तरियों के खुला छोड़े जाने की अवधि को कड़े रूप से मानकीकृत किया। रेन्डमाइज़ेशन द्वारा सभी संभावित पूर्वाग्रहों-पक्षपातों से प्रयोग को मुक्त किया जैसे तश्तरियों की 'धोने वाले पात्र' से दूरी, प्रयोगकर्ता से दूरी आदि।

छात्रों की मदद से हमने तीस जोड़ी प्लेटों को 6 इंची क्षेत्र के बीच और आसपास खुला छोड़ दिया, इस उम्मीद के साथ कि इस बार नतीजे 'सही' मिलेंगे।

अगले दिन हमने तश्तरियों को जांचा और गणना की। यह देखकर मुझे काफी निराशा हुई कि गणनाओं में कोई खास अंतर नहीं आया है। मैंने हर प्रकार की सांख्यिकीय बाजीगरी इन आंकड़ों पर

लागू करने की कोशिश की ताकि मैं कुछ नहीं तो न्यूनतम सांख्यिकीय सार्थकता का प्रदर्शन कर सकूं, और किसी तरह अपने दावे को सिद्ध करके अपनी इज्जत बचाऊं। पर फिर मुझे अचानक लगा कि मैं क्यों अपनी इज्जत बचाने की कोशिश करूं? अब तक यह बात मैंने इसलिए स्वीकार की थी क्योंकि मेरे शिक्षक ने ऐसा बताया था। यह तो आवश्यक नहीं कि यह बात सही ही हो। अब जबकि प्रायोगिक अवलोकनों और मुझे जो पढ़ाया गया उन दोनों में कोई मेल नहीं बैठ पा रहा है तो क्या मुझे अपने शिक्षक पर विश्वास कायम रखना चाहिए या मुझे अपने प्रायोगिक परिणामों पर भरोसा करना चाहिए? विज्ञान के असली भाव को मानते हुए निश्चित रूप से मुझे अपने अवलोकनों पर विश्वास करना चाहिए। मुझे यह स्वीकार कर अपना मन बनाने में कुछ समय लगा कि मैं कक्षा में सब छात्रों के सामने यह घोषित कर पाऊं कि जो पाठ हमने अपने अध्यापकों से सीखा था वह असंदिग्ध रूप से गलत ही था।

तो कहां से आया

इसके बाद मैंने इस प्रायोगिक विधि की उत्पत्ति की गहराई से जांच करने की ठानी। मैंने पाया कि कोई भी पाठ्य-पुस्तक यह सलाह स्पष्ट रूप से नहीं देती कि दो बर्नर के बीच की जगह में ही प्रायोगिक कार्य किया जाए। कोई भी ऐसा प्रामाणिक शोध उपलब्ध नहीं था जिसमें कि तथाकथित '6 इंची जीवाणुहीन क्षेत्र' और आसपास के जीवाणुओं का मात्रात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया हो। और सबसे बड़ी बात यह है कि जीवाणुहीन क्षेत्र की अवधारणा केवल कुछ ही विश्वविद्यालयों तक सीमित है, जहां इसका ऊपर से नीचे की ओर प्रसारण होता रहता है। मैं ऐसा कह रहा हूं क्योंकि मेरे शिक्षक ने यह कहा था, जिसने एक समय अपने अध्यापक से यह सीखा था, लेकिन यह कड़ी पकड़ में नहीं आती कि आखिर इस रूढ़ि की उत्पत्ति हुई कैसे?

मैंने माइक्रो-बायोलॉजी के बहुत सारे शिक्षकों से इस बारे में बातचीत की लेकिन उनकी प्रतिक्रियाएं आश्चर्यजनक लगीं। इनमें सबसे आम जवाब था, "अगर आप कहते हैं तो शायद ऐसा हो सकता है।" (इस बात का असली मतलब लगाया जाए तो वे कह रहे हैं लेकिन पढ़ाना तो हम वही जारी रखेंगे!)

एक अन्य प्रतिक्रिया, "दोनों बर्नरों के बीच वाले क्षेत्र में काम करने से चाहे कोई फायदा न होता हो, पर हम करें भी तो क्या, जब हम लेमिनर फ्लो वाला उपकरण खरीद नहीं सकते।" यह बात कुछ ऐसी हो गई जैसे माचिस से बिजली का बल्ब जलाने की कोशिश करना, यह कहते हुए कि जब बिजली है ही नहीं तो हम क्या करें!

एक शिक्षक का कहना था, "वैसे ही हम काफी बकवास पढ़ाते हैं। क्या फर्क पड़ता है?" काश, एक भी शिक्षक ने यह प्रयोग दुबारा करके स्वयं जांचा होता।

उन सभी छात्रों में से जिन्होंने इस

प्रयोग में हिस्सा लिया था, केवल एक मुट्ठी भर ने अपने प्रायोगिक परिणामों पर वास्तव में विश्वास दिखाया और इसके बचाव में कुछ कहने के लिए तैयार थे, प्रतिबद्ध थे। शेष छात्रों ने अपनी कूटनीतिक रणनीति पकड़ कर जवाब दिया कि 'अगर उनका परीक्षक इस जीवाणुहीन क्षेत्र में विश्वास रखता है तो यह वास्तविकता है। यदि वह इसे नहीं मानता तो ऐसा कोई क्षेत्र नहीं है '।

विज्ञान बाइबिल नहीं

इस कहानी से व्यापक रूप से लागू होने वाली कई सीख उभरती हैं। यह अनुभव विज्ञान पढ़ाने की हमारी सामान्य शैली को दर्शाता है। हम विज्ञान ऐसे पढ़ाते हैं जैसे कि गीता या बाइबिल या कुरान। विज्ञान में लिखा और पढ़ाया गया हर शब्द अविवादास्पद है। मान लीजिए आपका कोई अवलोकन उस सबके विरुद्ध जाता है, उसी बात को खंडित करता है जिसे आपको साधारणत: पढ़ाना चाहिए; ऐसे में यकीनन वही गलत होगा जो आपने अपनी आंखों से देखा था। पाठ्य-पुस्तकें और शिक्षक तो सर्वोपरि हैं। जो कुछ भी पाठ्य-पुस्तकों में लिखा है वह सही है और शिक्षक का हर कथन सत्य है, अपरिवर्तनीय है। हमारे छात्रों को इस परम्परा में इतना अच्छा प्रशिक्षण मिलता है कि वे सूक्ष्मदर्शी में झांकने से पहले ही जानते हैं कि उन्हें क्या दिखना चाहिए और वे उसका अवलोकन कर चित्र भी बना डालते हैं चाहे मेरी तरह शरारत पसंद शिक्षक ने लेंस के नीचे कोरी स्लाईड ही क्यों न रखी हो! जैसे-जैसे छात्र एक के बाद एक कक्षाओं की सीढ़ियां चढ़ता जाता है, और ऊंची कक्षाओं में पहुंचता है, उसकी स्वाभाविक प्रवृतियां खत्म होती जाती हैं और वह सोच-समझ रहित अनुयायी बन जाता है।

एक और अनुभव

हाईस्कूल में इससे फर्क अनुभव हो सकता है। केवल ज़रा से प्रोत्साहन से छात्र अपने आप खोज में लग जाते हैं। ईमानदारी से स्वयं अवलोकन करते हैं और स्वतंत्र रूप से अर्थ लगाते हैं। तु- के लिए मैं एक स्कूली अनुभव बताता हूं।

किताबों में एक प्रयोग दिया रहता है जिसमें कि हवा में ऑक्सीजन की

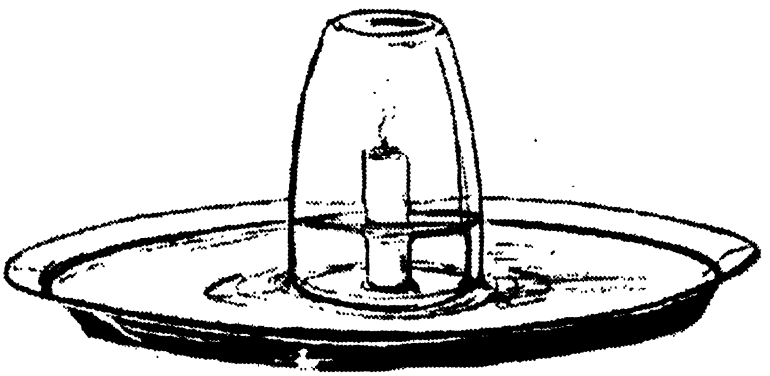

चित्र: धनंजय खिरवड़कर

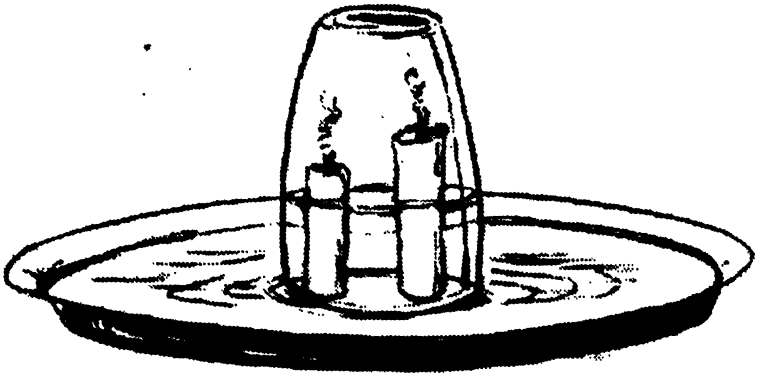

प्रतिशत मात्रा नापी जा सकती है। पुस्तकों के आदेशानुसार एक तश्तरी में थोड़ा पानी लें और एक मोमबत्ती जलाकर उसके बीच में रख दें। फिर कांच का एक गिलास उलटाकर मोमबत्ती पर रख दें। जल्दी ही लौ बुझ जाएगी और पानी गिलास मे चढ़कर 20% जगह घेर लेगा। इससे यह साबित होता है कि हवा में लगभग 20% ऑक्सीजन होती है। मुझे याद है दशकों पुराना यह प्रयोग और उसका चित्र जो मेरी किताब में बना था। कुछ भी नहीं बदला। जब मैं छात्र था तब मैंने बिना सोचे-समझे इस बात को माना था। हमारे प्रयोग केवल किताबों में ही हुआ करते थे। ऐसी कोई परम्परा भी नहीं थी कि प्रयोग स्वयं कर सकते हैं। मुझे शिक्षक के रूप में यह प्रयोग संदेहपूर्ण लगा; जो कार्बन डाईऑक्साइड उत्पन्न होती है उसका क्या होगा, मोमबत्ती के जलने और बुझने से तापमान में जो बदलाव आया उसका क्या होगा, क्या हवा फैलेगी या सिकुड़ेगी नहीं?

छात्रों के एक समूह ने वास्तव में यह प्रयोग किया। प्रयोग इस मायने में सही रहा कि पानी की कुछ मात्रा गिलास में चढ़ती है। परन्तु प्रायोगिक परिणामों में विभिन्नता पाकर मुझे बहुत हैरानी हुई। एक लड़के ने तय किया कि वह एक की बजाए दो मोमबत्तियां जलाएगा। सभी को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि दो मोमबत्तियां जलाने पर पानी ज़्यादा ऊंचाई तक चढ़ा। इस पर छात्रों की ओर से स्वाभाविक तार्किक निष्कर्ष था कि जब हम एक के स्थान पर दो मोमबत्तियां जलाते हैं तो हवा में ऑक्सीजन की मात्रा अधिक होती है!

लेख खत्म करते हुए यह पहेली मैं पाठकों के लिए छोड़ता हूं कि वे खुद प्रयोग करके देखें और अपने निष्कर्ष निकालें।*

मिलिंद वाटवे — पूना के आबासाहेब गरवारे कॉलेज में विज्ञान पढ़ाते हैं।

यह लेख 'इंडियन एकेडमी ऑफ साइंसेज़' द्वारा प्रकाशित साइंस मैगज़ीन 'रेज़ोनेन्स' से लिया गया है। मूल लेख अंग्रेज़ी में। अनुवाद — प्रीति जोशी।

***इस प्रयोग के विस्तृत विवरण के लिए देखें संदर्भ अंक-4, पृष्ठ-15 और अंक-5, पृष्ठ-38.**